IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 2, April-june, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.21497872

ISSN : 3048-6971

भारत के विभाजन में धार्मिक भावना बनाम क्षेत्रीय भावना

डा. श्याम कुमार
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
बीआरएम कालेज, मुंगेर
मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर
ईमेल: SHKUMAR49@GMAIL.COM

भारत विभाजन के तीन चौथाई शताब्दी वर्षोपरांत आज भी दोनों मुल्कों को विभाजन की वेदना सता रही है। देश के विभिन्न इतिहासकारों एवं अन्य विद्वानों द्वारा आज भी उन तमाम वजहों को इतिहास के पन्नों में तलाशा जा रहा है जो विभाजन को टालने में अथवा रोकने में संभव हो सकता था। विभाजन के विभिन्न आयामों पर संवाद जारी है। जिन घटनाओं को बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक काले दिनों में गिना जाता है उनमें यह विभाजन भी शामिल है। विभिन्न शोधार्थियों द्वारा यह विभाजन उनके शोध का विषय बना हुआ है। इन्हीं ताला"ों में शोधार्थियों द्वारा क्षेत्रीयता की भावना को और इसके तत्कालीन प्रभावों को देखा जा रहा है जो संभवतः विभाजन के धार्मिक उन्माद को रोकने में सक्षम हो सकता था। खासकर 1971 में जब पुनः एक बार पूर्वी पाकिस्तान अर्थात बांग्लादेश का पाकिस्तान से विभाजन हो गया जो धार्मिक आधार पर तो जुड़े थे, किंतु क्षेत्रीयता और भाषा के आधार पर नहीं। अब सवाल यह है कि यदि धार्मिक भावना इतनी प्रबल होती है तो बांग्लादेश क्यों बना? विभाजन के दौरान भी जिन्ना का माउंटबेटन से यह कहना कि ''बंगाल और पंजाब प्रांत के लोग हिंदू और मुसलमान होने से पूर्व क्रमशः बंगाली और पंजाबी हैं इसलिए इन संयुक्त प्रांतों का बंटवारा उचित नहीं होगा।''[1] यह सवाल पैदा करता है कि यदि इन प्रांतों के लोग बंटवारे से इंकार कर देते तो क्या जिन्ना पंजाब एवं बंगाल के बगैर पाकिस्तान को प्राप्त करके संतुष्ट हो जाते या फिर यह देश किस ओर जाता, इस आलेख में उन कारणों को तलाशने का प्रयास किया गया है जिसने धार्मिक उन्माद को बढ़ाया और क्षेत्रीयता की भावना को कमजोर किया जो अंततः विभाजन का प्रमुख कारण बना।

आजादी के दिन 15 अगस्त 1947 के अपने अंक में प्रमुख समाचार पत्र *टाइम्स ऑफ इंडिया* लिखती है कि "सैकड़ों वर्षो के बाद हमें आजादी की खुशी और विभाजन की वेदना एवं आतंक साथ–साथ प्राप्त हुए हैं। अखंड भारत के लिए अंतिम प्रयास कैबिनेट योजना थी, जिसकी घोषणा 1946 के मध्य में की गई और इसके उपरांत अगले छः महीने तक कांग्रेस, मुस्लिम लीग और ब्रिटेन के बीच इस योजना को लेकर कश्मकश जारी रहा और अंततः इस योजना के प्रावधानों ने ही इसे असफल कर दिया। इस दौरान अंतरिम सरकार का गठन हुआ जिसमें शामिल होने के लिए मुस्लिम लीग ने पहले मना किया परंतु बाद में कुछ मंशा के तहत अंतरिम सरकार में लीग शामिल हो गई और अपने उद्देश्यों के लिए अंतिम लड़ाई शुरू कर दी। इससे भारत एक भीषणतम अराजकता के दौर से गुजरने लगा। इसी दौरान ब्रिटिश वायसराय लॉर्ड माउंटबेटन ने भारत विभाजन की योजना के तहत दो प्रभुत्वों के बीच पूर्ण विभाजन का प्रस्ताव रखा जिसे 3 जून 1947 को अंतिम रूप से घोषित कर दिया गया।[2]

मौलाना अबुल कलाम आजाद अपनी किताब *इंडिया विंस फ्रीडम* में लिखते हैं कि "यदि पंडित नेहरू और सरदार पटेल जैसे बड़े कांग्रेसी नेता लॉर्ड माउंटबेटन के प्रभाव से मुक्त रहते हुए उनके बंटवारे के प्रस्ताव संबंधी योजना को नहीं स्वीकारते तो शायद विभाजन को टाला जा सकता था। लेकिन क्या इतना कह देना पर्याप्त है? क्या अंतरिम सरकार में लीग और कांग्रेस एक साथ नहीं थी? और उन अनुभवों का क्या जो देश पिछले 10 महीने से भुगत रही थी। ऐसे कई सवाल हैं जिसे विभिन्न विद्वान इतिहास के पन्नों और संस्मरणों में खंगालते रहे है।[3]

मुस्लिम राष्ट्रवाद का उदय

1857 के पूर्व तक ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है जो इन दो धार्मिक समुदायों के बीच के आपसी विवाद के बड़े कारणों को दर्शाता हो। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में मुस्लिमों की प्रभावशाली भागीदारी और ब्रिटिश सत्ता के प्रति इनकी घृणा ने विद्रोह उपरांत ब्रिटेन को नई नीति बनाने के लिए बाध्य कर दिया। ब्रिटिश रणनीतिकारों ने ऐसी योजनाओं के निर्माण और

---

1 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 180

2 Times of n India, 15 August 1947

3 Prasad, Dr Rajendar, India Divided, Hind Kitab, pg 88

क्रियान्वयन पर पूरा बल लगा दिया जो इन दो धार्मिक समुदायों की दूरी बढ़ाने के काम आ सकता था। भारतीय सेना में सैन्य अनुपात और विभिन्न धार्मिक समूहों के सैनिकों की संख्या को सुविधा अनुसार उचित अनुपात में रखा जाने लगा। जो समुदाय विद्रोह में अधिक उग्र थे उन्हें सरकारी कामकाज से धीरे–धीरे अलग किया जाने लगा। यहां एक और बात देखने को मिलती है कि जहां हिंदू समुदाय एक ओर अंग्रेजी शिक्षा के प्रति जागरूक थे और अधिक से अधिक संख्या में आकर्षित होकर इसे अपना रहे थे, वहीं दूसरी ओर मुस्लिम समुदाय में अंग्रेजी शिक्षा के प्रति लगाव और विश्वास बहुत कम था। इसका परिणाम यह हुआ कि विद्रोह के बाद के वर्षों में हुए बदलावों के साथ मुस्लिम समुदाय कदमताल नहीं कर पाए और इसी वजह से हिंदू समुदाय सामाजिक स्थिति में मुसलमानों से काफी आगे निकल गए। यह दोनों समुदायों के बीच जन्म ले रहे नफरतों का एक बड़ा कारण था। इसे अंग्रेजी सरकार बखूबी समझ रही थी। अंग्रेजों ने इस स्थिति को धार्मिक एकता कमजोर करने के लिए अपना प्रमुख उपकरण बना लिया और इसी की मदद से हिन्दुस्तान में जन्म ले रही भारतीय राष्ट्रवाद की लहर को कमजोर करने का प्रयास किया। परिणाम स्वरूप दोनों समुदाय क्रमशः हिंदू राष्ट्रवाद और इस्लामिक राष्ट्रवाद की ओर बढ़ने लगे।[4]

19वीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में मुस्लिम में भी नवोत्थान की भावना का उदय हुआ और परिस्थितियां बदलने लगी। सर विलियम हंटर अपनी किताब *इंडियन मुसलमान* में लिखते हैं कि ब्रिटिश सरकार द्वारा मुस्लिमों की प्रतिभा के अनुकूल शिक्षा में इसी नीति के तहत प्रोत्साहन मिला। यही अलीगढ़ शैक्षिक योजना के प्रोत्साहन का कारण भी बना और यहीं से सामुदायिक दूरी बढ़ने लगी। कुछ इतिहासकार इसे ब्रिटिश द्वारा मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के रूप में भी देखते हैं। इस दौरान सर सैयद अहमद खां इस्लाम में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव को बढ़ाने पर जोर डालने लगे साथ ही साथ इस्लाम और क्रिश्चियन समुदाय के संबंधों को आपस में मजबूत रखने संबंधी विचार का प्रचार–प्रसार करने लगे। इन्होंने तो यह भी कहा कि "एंग्लो मुस्लिम एकता संभव है परंतु, हिंदू मुस्लिम एकता संभव नहीं!" बाद के वर्षों में इन्हीं विचारों के प्रभाव में आकर कुछ मुस्लिम नेता कांग्रेस से दूरी बनाने लगे।[5]

1857 के बाद के दो दशकों में ब्रिटिश नीति की मुस्लिमों के प्रति कठोरता के कारण अथवा मुस्लिम में नवोत्थान की भावना के उदय के कारण अथवा अन्य कारणों से परंतु मुस्लिम में भी यूरोपीय गुणों का अनुसरण शुरु हो चुका था। परंतु ऐसा कभी नहीं हुआ कि सभी लोग एक ही विचारधारा से प्रभावित हुए हो वरन् कुछ लोगों का विचार था कि अपने उध्दार के लिए परमुखापेक्षी होना उचित नहीं अपितु, मुस्लिमों के इतिहास से ही प्रेरणा लेना उचित होगा। कुछ मुसलमान यूरोप को इस्लाम का शत्रु भी समझते थे और तदनुसार मुसलमानों को सावधान रहने की हिदायत भी देते थे।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशकों में मुस्लिम नवोत्थान से क्षारित यह शक्तियां दो धाराओं में विभक्त हो गई। एक धारा मुल्क को किसी भी कीमत पर अंग्रेजों से आजाद कराना चाह रही थी, जबकि दूसरी धारा इस संशय से ग्रसित थी कि आजादी के बाद मुसलमानों का क्या होगा? पहले धारा के प्रभावी मुस्लिम नेताओं की असमय मृत्यु और दूसरे दूसरी धारा के नेताओं में जिन्ना जैसे नेताओं के बढ़ते प्रभाव ने शंका, द्विधा और अंधकार की धारा को जीत दिला दी जिससे भारत का विभाजन अवश्यंभावी हो गया। राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में दूसरी धारा की यह समस्या आज भी दोनों राष्ट्रों में व्याप्त है और इसका समाधान यही होगा कि अल्पसंख्यकों के ह्रदय से बहुसंख्यकों के प्रति उस शंका को ही निर्मूल कर दिया जाए जिससे वह भय खाते हैं।[6] जहां तक पाकिस्तान के जन्म की बात है 1933 से पहले इसकी कोई अवधारणा नहीं थी। यद्यपि गोलमेज सम्मेलन में कुछ युवा मुसलमानों ने इंग्लैंड में अलग मुस्लिम राज्य की मांग अवश्य रखी थी परंतु, पाकिस्तान शब्द प्रथम बार चौधरी रहमत अली के लेख से प्रकाशित हुआ। इसमें इन्होंने पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, कश्मीर, सिंध और बलूचिस्तान को संयुक्त रूप से पाकिस्तान कहा। यहां "पाक" शब्द का शाब्दिक अर्थ शुद्धता से था किसी राज्य अथवा राष्ट्र से नहीं। हालांकि 1930 के ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय भाषण में सर मोहम्मद इकबाल ने कहा था कि वो पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत, सिंध और बलूचिस्तान को एक ही प्रांत में शामिल रखने इच्छा रखते हैं। लेकिन उनकी मंशा मुस्लिमों के लिए अलग राज्य होने की नहीं थी बल्कि वे पश्चिमोत्तर भारत के मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों को एकीकृत देखना चाहते थे।[7] यह बात उन्होंने बाद में एडवर्ड थामसन से कही थी कि उन्होंने लीग के अध्यक्ष होने के नाते ऐसा कहा था।[8] मुस्लिम लीग के विभिन्न अधिवेशनों से होते हुए यह विचार अंततः लाहौर घोषणा के रूप में 20 मार्च 1940 को एक अलग मुस्लिम राष्ट्र की मांग के रूप में सामने आया। 20 मार्च 1940 के अपने अध्यक्षीय भाषण में मोहम्मद अली जिन्ना कहते हैं कि ''हिंदू मुस्लिम समझौते के बिना कोई स्वराज हो ही नहीं सकता। गांधी और कांग्रेस वास्तव में अंग्रेजों से आजादी के लिए नहीं बल्कि

---

4 Do, 88-89

5 दिनकर, रामधारी सिंह – संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्र., 2011, पृ. 656

6 वही, पृ. 657–58

7 Indian Annual Regiter Vol-2, pg 334

8 Enlist India for Freedom Dairy,(London) pg 58

संविधान सभा के लिए लड़ रहे है जबकि वहां मुस्लिमों का वोट अनुपात उनके कौम हित के फैसले लेने में मददगार साबित नहीं होगा!"[9]

सांप्रदायिकता की बीज

सांप्रदायिकता को विभाजन के प्रमुख कारणों में एक कारण माना जाता है। धार्मिकों के बीच धर्म को लेकर वर्चस्व के भाव सांप्रदायिकता को जन्म देती है। इस वर्चस्व और संकुचन का परिणाम दो प्रमुख धर्मों के बीच टकराव की संभावना बनाती है। दुर्गादास अपनी किताब *इंडिया फ्रॉम कर्ज़न टू नेहरू एंड आफ्टर* में लिखते हैं कि "यदि पंजाब ने सांप्रदायिकता को जन्म देकर मॉन्टफोर्ड के सुधारों के कामकाज को खराब किया तो उत्तर प्रदेश में राजनीतिक वर्चस्व के मामले में एक ऐसे विवाद को जन्म दे दिया जो अंततः विभाजन का कारण बना।"[10]

1937 के चुनाव में कांग्रेसी खेमे के रफी अहमद किदवई प्रमुख रणनीतिकार थे। मुस्लिम लीग के लिए यह आसान नहीं था कि उत्तर प्रदेश के भूस्वामी अभिजात वर्ग के सामंती प्रभाव से चुनावी निर्णय को अलग रख सके और इस भूस्वामी वर्ग में अधिकांश हिंदू समुदाय के लोग आते थे। रफी अहमद किदवई ने चुनावी रणनीति के तहत खालिक उल जमाल, नवाब मोहम्मद इस्माइल जैसे अन्य कांग्रेसी मुसलमानों को मुस्लिम लीग की टिकट पर चुनाव लड़ने के लिए राजी करा लिया। चुनावी परिणाम घोषित होने के पहले कांग्रेस इन लीगर्स के साथ समझौते को तैयार भी थी परंतु जैसे ही उत्तर प्रदेश सहित अन्य छः प्रांतों के चुनाव का परिणाम घोषित हुआ, जिसमें कांग्रेस की जबरदस्त जीत थी, कांग्रेस ने अपना मन बदल लिया। 1936 एवं 1937 के वर्षों में कांग्रेस अध्यक्ष पंडित नेहरू ने मुस्लिम लीग सहित इन लीगर्स जो पुराने कांग्रेसी थे, के साथ गठबंधन करने से मना कर दिया जबकि दूसरी ओर महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, सरदार पटेल और गोविंद बल्लभ पंत जैसे नेता इस गठबंधन के पक्ष में थे। मोहम्मद अली जिन्ना भी इस गठबंधन के द्वारा उत्तर प्रदेश एवं मुंबई प्रांत में अपनी पहचान मजबूत करना चाह रहे थे! परंतु शीघ्र ही उन्हें इस गठबंधन में जाने से अपनी भविष्यगत पहचान और राजनीति के खात्मे का एहसास हुआ, जिसके उपरांत जिन्ना ने पंडित नेहरू समेत अन्य कांग्रेसी नेताओं पर तीखे हमले शुरू कर दिया।[11] 26 जुलाई 1937 को एक सम्मेलन में जिन्ना कहते हैं कि "नेहरू ऐसा व्यवहार करता है जैसे पूरी दुनिया की जिम्मेदारी उसी के कंधों पर हो। वह अपना काम छोड़कर दूसरों के काम में भी अपनी नाक घुसेड़रते हैं!" [12] पंडित नेहरू भी इस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और इस प्रकार मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच गठबंधन होने की बची–खुची गुंजाइश भी समाप्त हो जाती है। इसी दौरान रफी अहमद किदवई द्वारा लीग के सदस्यों को दलबदल कराए जाने के प्रयास ने स्थिति को और बदतर बना दिया। इस बीच कांग्रेस ने अपनी मंत्रालय का गठन शुरु कर दिया जबकि मुस्लिम लीग और जमींदारों की पार्टी ने साथ मिलकर एक जुझारू विपक्ष की भूमिका अदा की।[13] दुर्गादास अपनी किताब में आगे लिखते हैं कि "उन्होंने शिमला, दिल्ली और लखनऊ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच जो खाई देखी थी वह कभी पट नहीं पाई। बल्कि दिनोंदिन बढ़ती गई और देश को अंततः विभाजन तक लेकर गई। दुर्गादास आगे लिखते हैं कि दिसंबर 1938 में जिन्ना मुस्लिम लीग के अध्यक्षीय भाषण में पंडित नेहरू के इस सिद्धांत को चुनौती देते हैं कि भारत में केवल दो ही शक्तियां हैं जो क्रमशः ब्रिटिश और कांग्रेस हैं। जिन्ना यहाँ कहते हैं कि भारत में चार शक्तियां हैं जो क्रमशः ब्रिटिश राज, विभिन्न रजवाड़े, हिंदू और मुसलमान हैं। इस प्रकार जिन्ना ने देश में एक नई बहस को जन्म दे दिया जो क्रमशः बढ़ता ही चला गया। जिन्ना की महत्वाकांक्षा बलवती होती गई तद्नुरूप उनके शब्द तीखे होते गए और इसी भाव से ओतप्रोत जिन्ना ने कांग्रेस को फासीवादी ताकत कह गए, जबकि इसके कार्यकारिणी को फासी ग्रैंड काउंसिल तक कह दिया। इन सभी घटनाक्रम में महात्मा गांधी, पंडित नेहरू सहित अन्य कांग्रेसियों की निंदा सुनकर अंग्रेज अपनी मंशा की सफलता से खुशी का अनुभव कर रहे थे। जिन्ना ने महात्मा गांधी को हिंदू पुनरुत्थान–वादी तक कह दिया। इस प्रकार कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य समझौते की सारी गुंजाइश समाप्त हो गई।[14]

राजनीतिक गतिरोध

हालांकि 1942 में क्रिप्स मिशन के समय से ही भारत में एक अंतरिम सरकार बनाने के कई प्रयास हुए थे। व्दितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के उपरांत इंग्लैंड की टोरी सरकार की अंत और लेबर पार्टी के सत्ता में आने के उपरांत ही यह संभव हो पाया। 1946 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लिमेंट एटली द्वारा भेजे गए कैबिनेट मिशन के प्रस्ताव के अनुरूप चुनाव हुआ। 1946 के चुना में

---

9 Speech of Jinnah, Dated : 20 March 1940

10 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 181

11 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 182

12 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 181

13 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 182

14 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 183

मुस्लिम बाहुल्य सीटों पर कांग्रेस की पकड़ कमजोर हुई परंतु फिर भी 1585 सीटों में से 923 सीट के साथ कांग्रेस बहुमत में थी।[15]

वायसराय वेवेल ने भारतीय प्रतिनिधियों से अंतरिम सरकार में शामिल होने को कहा। 24 अगस्त 1946 को अंतरिम राष्ट्रीय सरकार के गठन की घोषणा हुई। इसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ राजेंद्र प्रसाद, आसिफ अली, शरत चंद्र बोस, सैयद अली जहीर, सी राजगोपालाचारी, डॉक्टर जॉन मथाई, सर शफात अहमद खान, बाबू जगजीवन राम, बलदेव सिंह और डॉक्टर एच सी भाभा शामिल हुए। 2 सितंबर 1946 को पंडित नेहरू ने अपने 11 सदस्य सहयोगियों के साथ अंतरिम सरकार का गठन किया इसमें लीग के सदस्य शामिल नहीं हुए जबकि उनके शामिल होने के विकल्प को खुला रखा गया था। बाद में एक निश्चिंत मं"ाा के तहत जब लीग इसमें शामिल हुइ तो 26 अक्टूबर 1946 को अंतरिम सरकार का पुनर्गठन किया गया। इसके तहत सैयद अली जहीर, शरत चंद्र बोस और सर शफात अहमद खान को बाहर करके पांच लीगी सदस्यों को जिसमें लियाकत अली खान, गजनफर अली खां, जोगेंद्र नाथ मंडल, अब्दुर निस्तारी एवं इब्राहिम इस्माइल चुंदरीगड़ को शामिल किया गया। वायसराय वेवेल की शुरू से ही इच्छा थी कि अंतरिम सरकार में कांग्रेस के साथ मुस्लिम लीग भी शामिल हो क्योंकि उन्हें लगता था कि ऐसा किए बगैर समस्या के समाधान में कोई प्रगति संभव नहीं हो पाएगा जबकि अंतरिम सरकार में शामिल होने के बावजूद भी मुस्लिम लीग ने संविधान सभा में शामिल होने से इंकार कर दिया।[16] लीग अंतरिम सरकार में तो शामिल हो गई परंतु सरकार के शासन व्यवस्था एवं अन्य कार्य में सहयोग करने का उनका कोई इरादा नहीं था। मुस्लिम लीग के सदस्य गजनफर अली ने तो 18 अक्टूबर 1946 को एक छात्र सभा में यह बात भी रखी थी कि हम अंतरिम सरकार में इसलिए शामिल हो रहे हैं ताकि पाकिस्तान की मांग को पुख्ता कर सकेंगे। अंतरिम सरकार *सीधी कार्रवाई आंदोलन* के युद्ध स्थलों में से एक है हम लोग सावधानी से जिन्ना के आदेशों का पालन करेंगे।[17] लियाकत अली खां से जब एक पत्रकार ने सवाल किया कि अंतरिम सरकार में शामिल होकर क्या आप नेहरू को नेता मानेंगे? उन्होंने बहुत चालाकी से जवाब दिया कि वर्तमान अधिनियम में नेता नाम की कोई चीज नहीं है हलांकि यह जवाब पर्याप्त नहीं था। जिन्ना से जब यही सवाल पूछा गया तो उन्होंने अपनी मंशा जाहिर कर दी कि ''अंतरिम सरकार में भी लीगी सदस्य प्रहरी है जो मुस्लिम हितों की रक्षा करेंगे। विभाजन से ही हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को कम से कम समय में स्वतंत्रता मिलेगी। आगे जिन्ना कहते हैं कि भारत का यह घरेलू झगड़ा तब तक चलता रहेगा जब तक पूर्ण पाकिस्तान प्राप्त नहीं हो जाता।[18] दूसरी ओर सरदार पटेल गजनफर के बयान से काफी नाराज थे इसलिए वे वायसराय वेवेल को पत्र लिखकर कहते हैं कि गजनफर को तब तक अंतरिम सरकार में शामिल नहीं किया जाए जब तक वह अपने भाषण को वापस नहीं ले लेते। सरदार पटेल ने वायसराय को स्पष्ट किया कि यदि लीग को अंतरिम सरकार में शामिल होना है तो एक टीम की तरह काम करना होगा ना की एक अलग संवर्ग के रूप में। दूसरे वे अंतरिम सरकार में तब शामिल हो सकेंगे जब वे कैबिनेट मिशन के 16 मई 1946 के प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे जो अविभाजित भारत की रूपरेखा रखता था। इतना ही नहीं सरदार पटेल लीग को सरकार में शामिल करने के पूर्व संविधान सभा में शामिल होने का लिखित आश्वासन चाहते थे। सरदार पटेल की चिंता वाजिब थी। लीग के सरकार में शामिल होने पर पहले तो गृह मंत्रालय एवं वित्त मंत्रालय को लेकर खींचातानी हुई फिर बाद में लीग ने वित्त मंत्रालय के माध्यम से सरकार को कोई सहयोग नहीं किया। नतीजतन विभिन्न विभाग अपने कार्यालय में कर्मी तक को रखने में असमर्थ थे। ऐसी नौबत आ गई कि कांग्रेस लीग के व्यवहार से तंग आकर स्वयं अंतरिम सरकार से बाहर होने की बात करने लगे। कुल मिला कर कांग्रेस और लीग का साथ–साथ रहना संभव नहीं हो पा रहा था।[19]

विभाजन की ओर बढ़ता देश

यह सच है कि 1946 में जब सांप्रदायिक हिंसा नियंत्रण से बाहर हो गई तो विभाजन के अलावा और कोई विकल्प शेष नहीं रह गया था। सांप्रदायिकता की स्थिति इतनी भयावह थी कि भारत के वायसराय वेवेल ने ऑपरेशन मेड हाउस जैसी योजना तक तैयार कर रखी थी जो उन्होंने अंतिम वायसराय माउंटबेटन को पदभार सौंपते हुए कहा था कि देश की स्थिति यदि थोड़ी भी और हिंसक होती तो यह अंग्रेजों को सुरक्षित ब्रिटेन भेजने के काम आता। जिस स्थिति की दुहाई वेवेल दे रहे थे वास्तव में इसकी नींव अंग्रेजों ने ही धर्म के आधार पर 1905 में बंगाल विभाजन के साथ रखी थी। इसके बाद 1909 और 1919 के

---

15 Joya Chatterji- The Spoils of Partison, Cambridge University Press, 2007, pg 252

16 गुहा, अरूण चंद्र–स्वतंत्रता संग्राम के पच्चीस वर्ष, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1990, पृ 324

17 गुहा, अरूण चंद्र–स्वतंत्रता संग्राम के पच्चीस वर्ष, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1990, पृ 330

18 गुहा, अरूण चंद्र–स्वतंत्रता संग्राम के पच्चीस वर्ष, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1990, पृ 331

19 पटेल, सरदार– भारत विभाजन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ 22

सुधारों द्वारा इसे पुख्ता किया गया। असहयोग आंदोलन से सविनय अवज्ञा आंदोलन तक का दौर हिंदू–मुस्लिम के बीच की दूरी को पाटने के बहुत अधिक काम नहीं आ सका जो 1929 के नेहरू रिपोर्ट और 1932 के पूना पैक्ट से स्पष्ट हो गया। इतिहासकार जोया चटर्जी लिखती है कि ''1932 में दलितों के लिए सीट आरक्षित होने से सवर्णों और मुसलमानों दोनों के कान खड़े हो गए। प्रतिनिधित्व में घटती संख्या से इनकी बेचैनी बढ़ने लगी जो खासकर बंगाल के हिंदू–मुसलमान के बीच बढ़ते टकराव के रूप में इसे देखा जा सकता है।''[20] दूसरी ओर कांग्रेस का धर्मनिरपेक्ष चरित्र भी हिंदूवादी नेताओं के प्रवेश और बढ़ते प्रभाव के कारण कमजोर पड़ रहा था। इस संबंध में इतिहासकार उमा कौरा लिखती है कि विभाजन की रेखा तब और गहरी हो गई जब 1929 के नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों को हिंदू महासभा ने मानने से इनकार कर दिया क्योंकि इसके तहत सेंट्रल असेंबली में मुस्लिमों के लिए 33 प्रति"ात सीट के आरक्षण की सुविधा रखी गई थी। इसके साथ ही कांग्रेसी मुसलमान खुद को राजनैतिक रुप से कमजोर महसूस करने लगे। इस दौरान कांग्रेस में पुरुषोत्तम दास टंडन, संपूर्णानंद एवं गोबिन्द बल्लभ पंत जैसे हिंदूवादी नेताओं के बढ़ते प्रभाव ने मुस्लिमों को और भी अधिक आशंकित कर दिया।

फ्रांसिस रोबिन विभाजन के मूल कारणों को सांप्रदायिकता से जोड़ते हुए लिखते हैं कि ''उत्तर प्रदेश के खानदानी मुसलमान और रईस जमींदार समाज में हमेशा अपनी हैसियत को बनाए रखना चाहते थे। बदलते परिवेश में उन्हें लगने लगा कि हिंदू बाहुल्य देश में अब उनका पुराना रुतबा बचाए रखना संभव नहीं था।[21] वास्तव में अलग देश की मांग मुस्लिम लीग ने रखी थी जो अंततः पूरी भी हो गई। इसलिए विभाजन का सारा दोष मुसलमानों पर मढ़ दिया जाता है लेकिन यह पूरा सच नहीं है क्योंकि मुस्लिमों में मौलाना आजाद एवं खान अब्दुल गफ्फार खां जैसे बड़े नेताओं ने हमेशा विभाजन का विरोध किया था। 24 मार्च 1946 को कैबिनेट मिशन के आगमन के साथ ही यह बात लगभग स्पष्ट हो चुकी थी कि अंग्रेज भारतीयों को सत्ता सौंपने की तैयारी में है। मिशन के सदस्यों में जहां एलेग्जेंडर चर्चिलवादी थे और भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट के रूप में देखते थे एवं सत्ता को यूं जाने से संतुष्ट नहीं थे वहीं स्टेफोर्ड कृप्स और पैथिक लारेंस सत्ता के सम्मानजनक हस्तांतरण के पक्ष में थे। कैबिनेट मिशन को जिन्ना के बंटवारे की मांग और कांग्रेस एवं लीग के बीच की बढ़ती हुई दूरी की पूरी जानकारी थी। कैबिनेट मिशन अपने उद्देश्य में स्पष्ट था। इसके प्रवधानों में एक संगठित भारत की जरूरत थी जिसमें संघीय ढांचे के साथ स्वायत्त प्रांत की व्यवस्था करनी थी। इस व्यवस्था पर आधारित प्रस्ताव को मुस्लिम लीग ने 6 जून 1946 को स्वीकार भी कर लिया था। कांग्रेस ने भी 26 जून को इसे स्वीकार करते हुए यह शर्त रखी कि निर्धारित समूहों में शामिल होने अथवा नहीं होने का फैसला प्रांत की अपनी इच्छा पर होगा और इसके लिए उन्हें किसी प्रकार से बाध्य नहीं किया जा सकेगा। इस शर्त के द्वारा लीग की मं"ाा पर एक तरह से ब्रेक लगा दिया गया था। उधर असम के मुख्यमंत्री गोपीनाथ बोर्दोलोई मुस्लिम बाहुल्य तीसरे समूह में रहना नहीं चाहते थे। जुलाई 1946 में हुए संविधान सभा के चुनावी नतीजों से जिन्ना घबराए हुए थे। कांग्रेस की 292 सीटों की तुलना में लीग के 76 सीट जिन्ना के किसी काम के नहीं थे। अंतरिम सरकार में मुस्लिम समुदाय के सदस्यों का चुनाव कहां से हों यह एक अलग विवाद का विषय बना हुआ था। इन परिस्थितियों में जिन्ना के राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को गहरी चोट पहुंची इसलिए जिन्ना ने खिन्न होकर आवेग व"ा 16 अगस्त 1946 को *सीधी कार्रवाई* का आह्वान कर दिया। इस संबंध में मशहूर पत्रकार कुलदीप नैयर अपनी आत्मकथा *बियोंड द लाइंस* में लिखते हैं कि एक पत्रकार द्वारा जिन्ना से यह पूछे जाने पर कि सीधी कार्यवाही हिंसक होगी या अहिंसक। इस पर जिन्ना कहते हैं कि मैं मर्यादाओं की बात नहीं करूंगा। जिन्ना के ये शब्द उनके इरादों को व्यक्त कर रहे थे। उधर कोलकाता में मुस्लिम लीग के नेशनल गार्ड ने जो कुछ किया उस आतंक की टीस आज भी लोगों से सुनी जा सकती है। इस घटना के साथ ही देश के कई हिस्सों में सांप्रदायिक दंगों की लहर सी आ गई। इससे कोलकाता सहित बिहार, उत्तर प्रदेश एवं पंजाब सभी इसकी चपेट में आ गए। हजारों जाने गई एवं कई हजार लोग गंभीर रूप से घायल हुए। इसी से घबराए वायसराय वेवेल ने अंग्रेजों को यहां से सुरक्षित इंग्लैंड भेजने के लिए जो योजना तैयार की थी उसे *ऑपरेशन मेडहाउस* का नाम दिया गया। इसके तहत भारत को अराजक तत्वों के हाथों सौंप अंग्रेज अपनी विदाई की योजना बना रहे थे।[22] इस दौरान वायसराय ने केंद्र में एक अंतरिम सरकार की स्थापना पर पुनः बल दिया जिसे कांग्रेस ने स्वीकारते हुए स्वयं को वायसराय की काउंसिल में शामिल कर लिया। लीग ने पहले इसमें शामिल नहीं होने का निर्णय लिया परंतु बाद में अपनी योजना अनुसार अपने मन बदलते हुए स्वयं को परिषद में शामिल कर लिया। परंतु लीग ने स्वयं को संविधान सभा से अलग ही रखा। लीग और कांग्रेस के बीच परिषद में विवाद थमने का नाम ही नहीं ले रहा था। आखिर तंग आकर नेहरू ने वायसराय वेवेल से शिकायत किया कि लीग उसी सरकार का हिस्सा कैसे हो सकती है जिसका की वह विरोध कर रही है। नेहरू ने पत्र लिखकर वायसराय से लीग के सदस्यों को बर्खास्त करने की मांग की। अब वायसराय को भारत का बंटवारा साफ दिखाई दे रहा था।[23]

---

20 Joya Chatterji- The Spoils of Partision, Cambridge University Press, 2007, pg 253

21 BBC Hindi, Article by MD. Sajjad, Dated 19 May 2018

22 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 57–59

23 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 60–61

रो"ानी की गुंजाई"ा

गांधी जी के निजी सचिव रहे प्यारेलाल अपनी किताब *द लास्ट फेज* के *शैडो ऑफ पार्टीशन* में लिखते हैं कि ''तमाम कोशिशों के बावजूद क्षेत्रीयता की यह भावना भी विभाजन को रोकने के काम ना सकी, मानो विभाजन ही अंतिम उपाय मात्र बचा हो।''[24] आखिर क्षेत्रीयता की यह भावना क्या वाकई में इतनी प्रबल थी जो जिन्ना के जिद के आगे चट्टान बन सकती थी? क्या वाकई अभी भी लोगों में एक धर्म विशेष के होने से अधिक बंगाली अथवा पंजाबी होने का भान था? इस संबंध में कुलदीप नैयर अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि ब्रिटिश संसद में इस घोषणा के बाद की अनिच्छुक प्रांतों को जबरदस्ती संयुक्त भारत में शामिल नहीं किया जा सकता। भारत में लीग और कांग्रेस दोनों को अपनी–अपनी स्थिति का भान हो गया। एक ओर जहां पाकिस्तान बनने का रास्ता तय था वहीं दूसरी ओर बंगाल, पंजाब एवं पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के स्वतंत्र रहने के निर्णय का मार्ग भी प्रशस्त हो चुका था। इस संबंध में घोषणोपरांत पंडित नेहरू कृष्णा मेनन से कहते हैं कि एक कटा–बंटा पाकिस्तान जिन्ना के किसी काम का नहीं होगा इसलिए वे विशेष शर्तों के साथ भारतीय संघ में शामिल होने के लिए तैयार हो सकते हैं।[25] इस संबंध में कॉलिंस और लापीयर ने अपनी मशहूर किताब *फ्रीडम एट मिडनाइट* में लिखा है कि पंजाब और बंगाल के बंटवारे की सूचना से जिन्ना घबराए हुए वायसराय माउंटबेटन से कहते हैं कि ''आप बात नहीं समझते, आदमी हिंदू या मुसलमान होने से पहले पंजाबी या बंगाली होता है। उनका एक ही इतिहास, एक ही भाषा, एक ही संस्कृति और एक ही अर्थतंत्र होता है। आपको उन्हें बांटना नहीं चाहिए। अगर आपने ऐसा किया तो झगड़ा और खून खराबा कभी खत्म नहीं होगा।'' इस पर माउंटबेटन कहते हैं कि लेकिन इन सभी से पहले आदमी हिंदुस्तानी है इसलिए आपको पाकिस्तान की मांग नहीं रखनी चाहिए।''[26] दरअसल माउंटबेटन ने जिन्ना के उसी मांग को बंगाल और पंजाब के बंटवारे का आधार बनाया जिसके तहत अल्पसंख्यक समुदाय के हितों की रक्षा का सवाल उठाया गया था। बंगाल और पंजाब में मूल अंतर यह था कि जहां बंगाल में भाषा, काव्य एवं संस्कृति ने लोगों को बांध रखा था एवं यहां रविंद्रनाथ टैगोर एवं नजरुल हसन जैसे कवियों ने लोगों को एक सूत्र में बांधते हुए बंगाली राष्ट्रवाद पैदा किया था वहीं पंजाबी राष्ट्रवाद जैसी कोई चीज नहीं थी जो हिंदू, मुसलमान और शिक्षक को एक सूत्र में जोड़ पाती। बंगाल में तो एक अनौपचारिक समझौते के तहत लीग और कांग्रेस की शाखाएं इस फैसले पर भी पहुंची की वृहद बंगाल के अस्तित्व में आने पर सरकार को हर फैसले के लिए कार्यपालिका और विधायिका में दो–तिहाई हिंदू सदस्यों का समर्थन प्राप्त करना जरूरी होगा। शायद यह हिंदुओं के अल्पसंख्यक होने के भय को दूर करने के लिए किया गया होगा। माउंटबेटन के लिए संयुक्त बंगाल या संयुक्त पंजाब जैसा कोई चीज नहीं था। इनके लिए स्थिति साफ थी कि अगर देश का बंटवारा होता है तो इन प्रांतों के बंटवारे को टाला नहीं जा सकता। जिन्ना बंटवारे से कम कुछ भी लेने को तैयार नहीं थे और इस तरह क्षेत्रीयता की भावना जिन्ना की जीद के आगे कुछ काम ना आई।[27]

अंतिम निर्णय की घड़ी

कैबिनेट मिशन के असफल होने के उपरांत माउंटबेटन के आगमन के साथ ही राजनेता लगभग आश्वस्त हो चुके थे कि ब्रिटिश भारतीयों को शीघ्र ही सत्ता सौंप देंगे। लेकिन इस बीच एक बड़ा भय का कारण सत्ता के अराजक तत्वों के हाथों में चले जाने का खतरा भी था। विभाजन से बचने के उपायों में मौलाना आजाद का विचार स्पष्ट था कि पाकिस्तान का आधार मुसलमानों का यह डर है कि केंद्र मुसलमानों की बहुसंख्या वाले इलाकों में भी दखलअंदाजी करेगा क्योंकि केंद्र में हिंदुओं का बहुमत होगा। इस भय को दूर करके विभाजन को डाला जा सकता था इसलिए उन्होंने सुझाव दिया की प्रांतीय इकाइयों को न सिर्फ स्वायत्तता दी जाए बल्कि अतिरिक्त शक्तियां भी सौंप दी जाए। संचार, रक्षा और विदेश मामलों को छोड़कर शेष सभी मामलों में प्रांतों को स्वायत्तता प्राप्त हो।[28]

भारत के विभाजन के संबंध में गांधी जी के क्या विचार थे? यह एक जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। इस संबंध में माउंटबेटन और गांधी जी के संवाद से पता चलता है कि माउंटबेटन के साथ अपनी प्रथम वार्ता में विभाजन शब्द सुनते ही गांधी तिलमिला उठे और आगे कुछ भी सुनने से इनकार कर दिया। और कमरे से बाहर जाते–जाते माउंटबेटन से यह तक कह गए कि ब्रिटिश चाहे तो जिन्ना के हाथों सत्ता सौंप कर जा सकती है किंतु विभाजन कतई स्वीकार नहीं। बाद के दिनों में हुए सांप्रदायिक दंगों और कांग्रेस एवं लीग के आपसी खटास ने शायद गांधी के विचारों को काफी प्रभावित किया होगा, क्योंकि इस संबंध में दुर्गादास अपनी किताब में लिखते हैं कि ''15 जून 1947 को हुए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सम्मेलन में माउंटबेटन योजना को 29 के मुकाबले 157 वोटों से सहमति दे दी गई। इस सम्मेलन में विशेष आग्रह पर गांधीजी

---

24 प्यारेलाल– महात्मा गांधी द लास्ट फेज, वोल्युम 2, नवजीवन प्रेस, 1958, पृ 4

25 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 61

26 सक्सेना, मुनीस (अनुवादक) – फ्रीडम एट मीडनाईट का हिन्दी अनुवाद, राधाकृष्ण, 2020, पृ 100

27 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 65–66

28 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 54

भी आमंत्रित थे और उन्होंने इस प्रस्ताव के पक्ष में अपनी सहमति प्रदान की थी। गांधीजी के जीवन में दिल और दिमाग के बीच संतुलन बनाए रखने की शायद यह सबसे बड़ी घटना थी।''[29]

विभाजन संबंधी अन्य महत्वपूर्ण तथ्यों में पत्रकार कुलदीप नैयर अपनी आत्मकथा *बियोंड द लाइंस* में सरदार पटेल की भूमिका पर बल देते हुए लिखते हैं कि लीग के व्यवहार से कांग्रेस त्रस्त हो चुकी थी और कुछ भी स्वीकारने को तैयार थी। सरदार पटेल सबसे अधिक झुंझलाए हुए थे जबकि माउंटबेटन कांग्रेस एवं नेहरू पर सरदार पटेल के पकड़ को भांप चुके थे। उन्हें अपनी योजना की सफलता की संभावना पटेल के माध्यम से दिखाई पड़ा और उन्होंने पटेल के विश्वासपात्र वी पी मैनन को अपने स्टाफ कांसिल में शामिल कर लिया। माउंटबेटन मेनन के माध्यम से यह जान चुके थे कि नेहरू को मनाने की चाबी पटेल के पास थी। आगे नैय्यर लिखते हैं कि इंग्लैंड में कैंपवेल जॉनसन के साथ मुलाकात में इन्हें पता चला कि विभाजन की योजना बनाने में वी पी मेनन ने सरदार पटेल के कहने पर ही माउंटबेटन को मदद की थी।[30]

भारतीय राजनीति में अक्सर विभाजन का दोष पंडित नेहरू के मत्थे मढ़ दिया जाता है जो कि हकीकत नहीं है। इतिहास के पन्नों में इसकी पड़ताल से बहुत कुछ साफ हो जाता है। वर्ष 1946 में स्टेफार्ड क्रिप्स ने ब्रिटिश संसद में घोषणा कर दी थी कि हम अनिच्छुक प्रांतों को जबरदस्ती संयुक्त भारत में शामिल नहीं कर सकते। इसी निर्णय से किसी न किसी रूप में पाकिस्तान बनने का रास्ता साफ हा गया था। इस बीच अंतरिम सरकार में लीग और कांग्रेस को शामिल करके दोनों कौम को एक साथ लाने का प्रयास किया गया किंतु यह बेहद दुर्भाग्यपूर्ण था कि इसके बावजूद दोनों कौम के संबंधों में कोई सुधार नहीं हो पा रहा था। लीग सरकार में रहते हुए संविधान सभा का विरोध कर रही थी। पटेल तंग आकर कांग्रेस से इस्तीफा देने को कहने लगे। पंडित नेहरू ने वायसराय से शिकायत किया कि लीग उसी सरकार का हिस्सा नहीं हो सकती जिसका वह विरोध करती है। वजह साफ था कि जिन्ना पाकिस्तान से कम कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। इस संबंध में कुलदीप नैयर लिखते हैं कि अगर किसी चीज ने नेहरू और पटेल को बंटवारा स्वीकारने को विवश किया तो वह जिन्ना की जिद ना होकर मिलजुल कर सरकार चलाने का असफल प्रयोग था। दरअसल 20 फरवरी 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री एटली की घोषणा और बीते वर्ष लीग के विरोधात्मक के रवैया से इन दोनों कांग्रेसी नेताओं को लगने लगा था कि भारत की आजादी तय है। ऐसे में लीग के अड़ियल रवैया से देश को आगे ले जाना संभव नहीं हो पाएगा, इसलिए विभाजन ही एकमात्र विकल्प बचा है।[31] इस प्रकार एकीकृत रहने की संभावनाओं के बावजूद भारत को आजादी से मिलने वाले उत्सव और आनंद के बदले जनमानस में शोक, घृणा, आंसु, अलगाव और निर्वासन व्याप्त हो उठा।

---

29 दुर्गादास : इंडिया फ्राम कर्जन टू नेहरू एण्ड अफटर, कालिंस सेंट जेम्स प्लेस, लंदन, 1969, पृ. 247–48

30 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 63

31 नैयर, कुलदीप–एक जिन्दगी काफी नहीं, राजकमल प्र. 2019, पृ 60–61